Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
July to September 2025, E-Journal, Vol. I, Issue LI (51), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

बस्तर में शैव संप्रदाय का आस्थागत प्रवाह

डॉ. वर्षा सूर्यवंशी*

* संविदा सहायक प्राध्यापक (इतिहास) डॉ खूबचंद बघेल शा. पी.जी. महाविद्यालय, भिलाई-3 (छ.ग.) भारत

शोध सारांश – बस्तर में आस्थागत प्रवाह का ऐतिहासिक अध्ययन करते हुए यह स्पष्ट हुआ कि यह क्षेत्र भारत की धार्मिक, सांस्कृतिक एवं दार्शनिक विविधता का सजीव प्रतीक है। यहाँ की आस्थाएँ केवल किसी एक मत या संप्रदाय पर आधारित नहीं रहीं बल्कि समय के साथ विभिन्न धर्मों, उपासना-पद्धतियों एवं लोक परंपराओं के संगम से विकसित हुईं। इस अध्ययन के अंतर्गत बस्तर की आदिम संस्कृति में शैव, वैष्णव, शाक्त, जैन एवं बौद्ध संप्रदायों के प्रभाव का विश्लेषण किया गया। साथ ही यह भी देखा गया कि इन सबका सम्मिलित प्रभाव यहाँ की लोकधर्मीय जीवनशैली, कला, स्थापत्य, भाषा एवं सामाजिक व्यवहार में किस प्रकार परिलक्षित होता है।

शब्द कुंजी – आस्थागत, शैव, वैष्णव, शाक्त, जैन, बौद्ध, लोकधर्मी, जीवनशैली, कला, स्थापत्य, भाषा।

प्रस्तावना – शैव संप्रदाय ने बस्तर में धर्म का सबसे व्यापक स्वरूप ग्रहण किया। यहाँ के शिव मंदिर, शिवलिंग एवं नागवंश एवं काकतीय वंश के राजकीय संरक्षण ने इस संप्रदाय को जनमानस में गहराई से स्थापित किया। शिव की पूजा यहाँ केवल मंदिरों तक सीमित नहीं रही बल्कि ग्रामदेवता, पर्वत, जलस्रोत एवं वृक्षों के रूप में शिव तत्व का लोक रूपांतरण देखने को मिलता है। काकतीय शासन के पश्चात वैष्णव संप्रदाय का भी बस्तर में स्थायित्व रहा। विष्णु, वराह एवं लक्ष्मी-नारायण की मूर्तियों की प्राप्ति इस बात का प्रमाण है कि यहाँ के लोग विष्णु के विभिन्न अवतारों की पूजा करते रहे। ग्रामीण समाज में भक्ति आंदोलन की धारा ने वैष्णव आस्थाओं को लोकगीतों एवं नृत्य परंपराओं के माध्यम से लोकप्रिय बनाया।

बस्तर की आस्थागत प्रवाह का समग्र विश्लेषण यह दर्शाता है कि इस क्षेत्र में शैव संप्रदाय की आस्था सबसे अधिक गहराई से विकसित हुई। हिंदू त्रिदेव सिद्धांत में शिव को संहारकर्ता एवं पुनर्सर्जक दोनों रूपों में माना गया है एवं बस्तर की धार्मिक चेतना में भी यही स्वरूप स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। शिव उपासना का आरंभिक आधार सिंधु सभ्यता के पशुपति रूप में मिलता है जबकि वैदिक साहित्य में 'रुद्र' के रूप में एवं बाद में 'महेश' एवं 'पशुपति' के रूप में उनका वर्णन हुआ।

समय के साथ यह आस्था मूर्तिपूजा एवं लिंग-पूजन परंपरा में रूपांतरित हुई जिसका उल्लेख मत्स्य पुराण एवं महाभारत के अनुशासन पर्व में मिलता है। गुप्त काल में शिव-पार्वती की संयुक्त मूर्तियों, हरिहर स्वरूप की प्रतिष्ठा एवं त्रिमूर्ति सिद्धांत ने शैव परंपरा को एवं अधिक संगठित रूप प्रदान किया। इस काल में शिव के साथ अन्य देवों की उपासना ने धार्मिक समन्वय की परंपरा को सशक्त किया।

दक्षिण भारत में पल्लव, राष्ट्रकूट एवं चोल शासकों ने शैव धर्म को राजधर्म के रूप में प्रतिष्ठित किया। एलोरा का कैलाश मंदिर, तंजौर का बृहदेश्वर मंदिर एवं नयनार संतों की भक्ति परंपरा ने शैव भक्ति को सामाजिक आधार दिया। शिव पुराण में उल्लिखित चार प्रमुख शैव संप्रदाय पाशुपत, वीरशैव (लिंगायत), कापालिक एवं कालमुख अपने सिद्धांतों एवं आचारों के अनुसार विभिन्न कालों में समाज पर प्रभाव डालते रहे।

पाशुपत संप्रदाय, जिसे लाकुलीश ने स्थापित किया सबसे प्राचीन एवं दार्शनिक दृष्टि से संगठित माना जाता है। वीरशैव या लिंगायत परंपरा दक्षिण भारत से आरंभ होकर आगे चलकर बस्तर क्षेत्र में भी लोकप्रिय हुई। कापालिक एवं कालमुख संप्रदायों ने तांत्रिक रूप से शैव साधना को लोकपरक रूप दिया जो बस्तर की जनजातीय मान्यताओं के साथ आसानी से घुल-मिल गया। इसके अतिरिक्त कश्मीरी शैव संप्रदाय (वसुगुप्त द्वारा प्रवर्तित) एवं नाथ परंपरा (मत्स्येंद्रनाथ एवं गोरखनाथ से संबद्ध) ने भी शैव दर्शन को व्यापक आध्यात्मिक आयाम प्रदान किए।

बस्तर के धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक इतिहास में यदि किसी आस्था ने सबसे गहरा एवं स्थायी प्रभाव छोड़ा है तो वह निःसंदेह शैव धर्म है। यह कहना कठिन है कि शैवधर्म ने प्राचीन कोशल या नल राज्य में कब अपनी जड़ें जमाईं किंतु प्राप्त अभिलेखीय, मुद्रात्मक एवं स्थापत्य साक्ष्य यह संकेत देते हैं कि तीसरी शताब्दी के उत्तरार्ध से ही इस क्षेत्र में शिव उपासना की परंपरा स्थापित हो चुकी थी। नलवंश के आरंभिक शासक जैसे भवदत्तवर्मन एवं अर्थपति ने अपने राज्य को महेश्वर (शिव) एवं महासेन (कार्तिकेय) को समर्पित बताया जिससे यह सिद्ध होता है कि शासन व्यवस्था में धार्मिकता एवं आस्था का विशेष स्थान था। ये शासक स्वयं को शिव के प्रतिनिधि के रूप में देखते थे एवं इसीलिए उनके शासनकाल में शैवधर्म केवल एक धार्मिक परंपरा नहीं बल्कि एक राजनीतिक वैधता का आधार भी बन गया।

नलवंश के प्रतिष्ठित शासक वराहराज जिन्हें नलवंश का वास्तविक संस्थापक माना गया है उनके द्वारा जारी किए गए स्वर्ण सिक्कों पर वृषभ एवं चंद्र के अंकन स्पष्ट रूप से शैवधर्म की प्रधानता को दर्शाते हैं। वृषभ शिव का वाहन एवं चंद्र उनके मस्तक का प्रतीक हैं। इन दोनों प्रतीकों का प्रयोग यह दर्शाता है कि शैव उपासना केवल शाही परिवार तक सीमित नहीं थी बल्कि समाज के व्यापक वर्ग में लोकप्रिय थी। वराहराज एवं उनके उत्तराधिकारियों के काल में बस्तर संभाग के अनेक स्थलों, कोंटा, कांकेर,

चारामा, भोंगापाल एवं दंतेवाड़ा में लिंग पूजा का प्रचलन आरंभ हुआ। भोंगापाल से प्राप्त युगल शिवलिंग तथा बुद्ध प्रतिमा यह संकेत देती है कि उस समय धर्मों के सह-अस्तित्व एवं सांस्कृतिक सहिष्णुता का वातावरण था। यह वही काल था जब शैवधर्म एक संगठित आस्था प्रणाली के रूप में स्थापित हो चुका था एवं शिव के साथ-साथ उनके पुत्र स्कंद या कार्तिकेय की पूजा भी व्यापक रूप से की जाने लगी थी।

नलवंशीय काल के अभिलेखों में 'महेश्वर' एवं 'महासेन' शब्दों का बारंबार उल्लेख यह प्रमाणित करता है कि इन देवताओं की उपासना केवल राजपरिवार तक सीमित नहीं रही बल्कि आम जनमानस में भी यह विश्वास रच-बस गया। भीमसेन देव के गुंजाम ताम्रपत्र में शिव उपासना का प्रत्यक्ष उल्लेख मिलता है जिससे यह सिद्ध होता है कि नल शासकों के शासनकाल में शैवधर्म एक राज्यधर्म के स्वरूप में स्थापित था। इस युग में तांत्रिक एवं शाक्त प्रभावों के साथ-साथ शैव परंपरा के दार्शनिक पक्षों का भी विकास हुआ जिसने बस्तर के धार्मिक जीवन को गहराई प्रदान की।

नलवंश के पतन के बाद जब छिंदक नागवंश का उदय हुआ तब बस्तर का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य नई ऊँचाइयों पर पहुँचा। छिंदक नागवंश के शासक अत्यंत धर्मपरायण, कलाप्रेमी एवं स्थापत्य-प्रेमी थे। उनकी राजधानी बारसूर को 'मंदिरों का नगर' कहा जाता है जहाँ आज भी अनेकों प्राचीन मंदिरों के अवशेष विद्यमान हैं। इन मंदिरों में शिवलिंग, नंदी प्रतिमाएं एवं शैव प्रतीक अत्यधिक मात्रा में मिलते हैं जो यह दर्शाते हैं कि शैवधर्म नागवंशीय शासन का केंद्रीय धार्मिक तत्तव था। छिंदक नागवंशीय शिलालेखों में 'परमहेश्वर' शब्द का प्रयोग इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि शासक स्वयं को शिव का अनन्य भक्त एवं उनके संरक्षण में शासन करने वाला मानते थे।

इस काल में शैव स्थापत्य कला एवं मूर्तिकला का उत्कर्ष हुआ। नागवंशीय कलाकारों ने ग्रेनाइट एवं बलुआ पत्थर पर अद्भुत शिवलिंग, नंदी एवं भैरव मूर्तियाँ निर्मित कीं। इस काल में शैव एवं शाक्त विचारधाराओं का सम्मिलन हुआ जिससे तंत्र साधाना एवं लोकविश्वासों का मेल हुआ। यह धार्मिक समन्वय केवल पूजा-पद्धतियों तक सीमित नहीं था बल्कि समाज एवं संस्कृति के सभी पहलुओं में इसकी गूंज सुनाई देती थी। शैव परंपरा धीरे-धीरे जनजातीय जीवन में भी समाहित होती गई, एवं यही प्रक्रिया आगे चलकर लिंगोपेन पूजा के रूप में विकसित हुई जो आज भी बस्तर के आदिवासी समाज में गहराई से प्रचलित है।

समग्रत: देखा जाए तो बस्तर का धार्मिक प्रवाह केवल किसी एक धर्म का इतिहास नहीं है बल्कि यह संस्कृति, आस्था एवं जीवनदर्शन का संगम है। यहाँ शिव केवल एक देवता नहीं बल्कि लोकजीवन की निरंतरता, सृजन एवं विनाश के संतुलन का प्रतीक बनकर उपस्थित हैं। बस्तर के पर्वों, परंपराओं एवं लोककथाओं में शिव की सर्वव्यापकता इस तथ्य को पुष्ट करती है कि यह क्षेत्र सदियों से आस्था एवं आध्यात्मिकता का जीवंत केंद्र रहा है।

लेख के प्रमुख निष्कर्ष के अनुसार;

1. बस्तर में शैवधर्म का प्रसार नल काल से प्रारंभ होकर नागवंशीय काल में अपनी चरम सीमा तक पहुँचा जिससे यह क्षेत्र शैव संस्कृति का केंद्र बन गया।
2. राजाओं से लेकर आम जनता तक शिव उपासना का प्रसार दर्शाता है कि धर्म एवं सत्ता के बीच एक गहरा वैचारिक संबंध विद्यमान था।
3. लिंगोपेन पूजा प्राचीन शैव परंपरा की जनजातीय रूपांतरण है जिसने बस्तर के स्थानीय आस्था-संवेदनों को जीवित रखा।
4. धर्म एवं कला का अभिन्न संबंधा इस क्षेत्र की मूर्तिकला, स्थापत्य, शिलालेखों एवं लोकविश्वासों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।
5. तांत्रिक एवं शाक्त प्रभावों ने शैव परंपरा को बहुआयामी स्वरूप दिया जिससे धार्मिकता के साथ-साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना का भी विकास हुआ।

अत: निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि बस्तर में शैव धर्म का आस्थागत प्रवाह का ऐतिहासिक विकास केवल धार्मिक अध्याय नहीं है बल्कि यह लोकजीवन, सत्ता, संस्कृति एवं आध्यात्मिकता की परस्पर अंत:क्रिया का इतिहास है। शैवधर्म के माध्यम से यह क्षेत्र भारतीय धार्मिक परंपरा की उस निरंतरता का प्रतीक बनता है जो विविधता में एकता एवं आस्था में मानवता की भावना को सदियों से जीवित रखे हुए है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. व्यक्तिगत शोध के आधार पर।

****